IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 2, April-june, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.20204216

ISSN : 3048-6971

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में आदिवासी समाज और साहित्य का योगदान

डॉ. कुमारी अपर्णा
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राजेंद्र मिश्र महाविद्यालय, सहरसा
(भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा)

प्रस्तावना - भारतीय इतिहास में आदिवासी समाज का एक विशेष स्थान रहा है। भारत के मूल निवासी के रूप में आदिवासी को ही देखते हैं। यह भारत का सबसे प्राचीन समुदायों में से एक है। इनका इतिहास आर्यों से भी पूर्व का है। इनका इतिहास तीन लाख साल तक पुराना हो सकता है। लेकिन यह दुरिभाग्यपूर्ण है कि हिन्दी साहित्य में आदिवासी समाज और साहित्य पर विमर्श बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में संभव हो सका। आज हिन्दी साहित्य में एक सशक्त धारा के रूप में आदिवासी समाज के जीवन और दर्शन को केंद्र में रखकर विमर्श चल रहा है। जनजाति कहलाने वाले आदिवासी समाज के जीवन के संघर्षों, समस्याओं, संवेदनाओं और संस्कृतियों को केंद्रित कर आदिवासी एवं गैर आदिवासी हिंदी रचनाकारों और साहित्य-चिंतकों ने विचार-विमर्श किया है। इसलिए आदिवासी समाज का भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान को रेखांकित करने वाले रचनाकारों और रचनाओं के संदर्भ में यह अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा।

औपनिवेशिक काल के दौरान, आदिवासियों ने अपनी जमीन, जंगल और स्वशासन की रक्षा के लिए अनेक सफल आंदोलनों का नेतृत्व किया। बिरसा मुंडा, सिद्धू कान्हो जैसे आदिवासी योद्धाओं ने ब्रिटिश हुकूमत को चुनौती दी। आधुनिक स्थिति यह है कि भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति' के रूप में मान्यता दी गई है। आज भी वे अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, कला और परम्परा को बनाए रखे हैं जो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता में एक अमूल्य योगदान दे रहा है।

बीज शब्द - आदिवासी समाज, आदिवासी साहित्य, प्रकृति-निष्ठा, वन कानून, जनजाति, आदिवासी लोक साहित्य, जंगल अधिनियमों और भूमि नीतियों।

विषय-विश्लेषण -

आदिवासी समाज अपनी प्रकृति-निष्ठा के लिए जाना जाता है। वे जंगल, जमीन और जल को केवल संसाधन नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व का आधार और पवित्र स्थान मानते हैं। जब औपनिवेशिक शासकों ने वन कानून लागू किए और उनके वन उपज पर कब्जा करना चाहा, तो यह उनकी धार्मिक आस्था और उनकी जमीन तथा जीवन शैली पर सीधा प्रहार माना गया।

आदिवासी समाज की संरचना समानता और सामूहिकता पर आधारित है। यह जातिगत भेदभाव और विभेद मुख्यधारा के समाज की तरह जटिल नहीं है। स्त्री- पुरुष को समानता का अधिकार है। संपत्ति में सामूहिक अधिकार की भावना और साथ मिलकर काम करने की परम्परा है। शोषण के खिलाफ लड़ाई किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि पूरे समुदाय की बन जाती है। यह सामूहिकता प्रतिरोध आंदोलनों को मजबूत और एकजुट बनाए रखती है। आदिवासी समाज में जाति की जगह “जनजाति” शब्द का प्रयोग किया जाता। इन्हें कई जनजातियों के रूप में वर्गीकृत भी किया गया है, जैसे संथाल, मुंडा, भील, गोंड आदि ।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही, लेकिन इतिहास की मुख्य धारा में इसे कम आंका गया है। आदिवासियों ने न केवल अंग्रेजी शासन के खिलाफ संघर्ष किया बल्कि अपने जंगल, जमीन और आजादी की रक्षा के लिए अनेक विद्रोह भी किए। अंग्रेजों ने जब जंगलो और भूमि पर कब्जा कर लिया,

तो आदिवासी समुदायों की आजीविका छीन सी गई। उन्होंने जंगल अधिनियमों और भूमि नीतियों का विरोध किया। अंग्रेज और जमींदार दोनों के अत्याचार के खिलाफ संघर्ष का बिगुल फूंका। स्वतंत्रता आंदोलन के बहुत पहले से आदिवासी अपने क्षेत्रीय विद्रोहों के माध्यम से अंग्रेजो का विरोध कर रहे थे। इन विद्रोह ने बाद के राष्ट्रीय आंदोलन की भूमि तैयार की।

1. संथाल विद्रोह (1855) नेता -सिद्धो और कान्हू

क्षेत्र - वर्तमान झारखंड और पश्चिम बंगाल

कारण-अंग्रेजी द्वारा भूमि हड़पना और महाजनी शोषण

2. भील आंदोलन नेता - गोविन्द गुरु

क्षेत्र- राजस्थान और गुजरात के सीमावती इलाक

उद्देश्य - धार्मिक - सामाजिक सुधार अंग्रेजी शासन विरोध

3. मुंडा अंदोलन (उलगुलान) नेता- बिरसा मुंडा (1875-1900)

क्षेत्र - छोटानागपुर (झारखण्ड)

उद्देश्य - "बिरसा राज" की स्थापना - यानी आदिवासी स्वराज और अन्य जनजातीय संघर्ष, गोंड और अन्य जनजातीय संघर्ष ।

रानी दुभावती (गोंड राज्य की रानी) ने मुगलों और बाद में अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया। तेलंगाना, उड़ीसा, असम और मध्य प्रदेश के आदिवासियों ने भी कई छोटे-बड़े आंदोलन किए। 20 वीं शताब्दी में गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन फैला तब आदिवासियों ने भी जमकर हिस्सा लिया। डांडी-यात्रा, असहयोग आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में कई आदिवासी क्षेत्रों ने समर्थन किया। इसे महात्मा गाँधी ने दिशा प्रदान की।

आदिवासी नायक बिरसा मुंडा को आजादी का “आदिवासी मसीहा” कहा जाता है। सिद्धू कान्हू, गंगा नारायण सिंह, गोविंद गुरु, वीर नारायण सिंह, राघुनाथ शाह, शंकर शाह जैसे अनेक योद्धाओं ने बलिदान दिया। हम भारत के इतिहास में यह पाते हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों की अहम भूमिका रही है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि स्वतंत्रता केवल शहरी या शिक्षित वर्ग की आकांक्षा नहीं बल्कि जनजातीय समाज की भी चाहत है। भारत की आजादी केवल दिल्ली या कोलकाता के आंदोलनों से नहीं बल्कि जंगलों और पहाड़ों की माटी में उपजे विद्रोह से भी मिली है।

आदिवासी साहित्य भारतीय साहित्य की एक सशक्त धारा है जो इन जनजातीय समाज की आवाज है। जिसे मुख्य धारा के इतिहास और साहित्य से हमेशा दूर रखा गया है। आदिवासी समाज में साहित्य का आरंभ मौखिक रूप में हुआ। लोकगीत, लोककथा, कहावतें, मिथक, पहेलियाँ, नृत्य आदि इसके प्रमुख रूप हैं। यह साहित्य लिखित नहीं, सुनने-गाने की परंपरा पर आधारित है। इसमें प्रकृति, पूर्वज, देवता, प्रेम, श्रम आदि मुख्य विषय हैं। आदिवासी साहित्य का सबसे प्रमुख प्रकृति-निष्ठा है। जंगल, पहाड़, जानवर, पेड़-पौधे इनके जीवन और साहित्य के मुख्य केन्द्र में हैं। इस साहित्य में सहयोग और साझेदारी के मूल्य झलकते हैं। आदिवासियों में आदिवासी अस्मिता का प्रश्न मुख्य हो गया है। आदिवासी साहित्य की भाषा सरल, लोकजीवन से जुड़ी और भावनात्मक होती है। इसमें लोकभाषा की लय प्रतीक और प्राकृतिक चित्रण बहुत सशक्त होते हैं। अब आदिवासी साहित्य लिखित रूप में व्यापक हो रहा है कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में। इसमें शिक्षा, जंगल-कानून, पर्यावरण और विकास के मुद्दे प्रमुख विषय बन गए है। यह साहित्य अब राष्ट्रीय और वैश्विक मंचों पर अपनी पहचान बना चुका है। आदिवासी साहित्य का स्वरूप प्रकृति, संस्कृति, संघर्ष और अस्मिता से जुड़ा है। यह केवल साहित्य नहीं, बल्कि एक जीवंत परंपरा और आत्म-सम्मान का प्रतीक है।

आदिवासी लोक साहित्य उनकी सांस्कृतिक विरासत का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। उनकी लोक कथाएँ और गीत उनके पूर्वजों के शौर्य और शोषणों के खिलाफ संघर्ष की गाथाएँ उन्हें याद दिलाती हैं कि वे लड़ाकू और स्वाभिमानी समुदाय हैं। इन लोगों के द्वारा सामूहिक गीत और नृत्य, उत्सव या अनुष्ठान के साथ-साथ विरोध प्रदर्शन करने का माध्यम है। कई आदिवासी कथाएँ शासकों और साहूकारों के अन्याय को दर्शाती है, जो समुदाय में संघर्ष की चेतना को जिंदा रखती है।

1947 के बाद भारत स्वतंत्र हो गया लेकिन आदिवासी समाज को सामाजिक-आर्थिक स्वतंत्रता अभी भी पूरी तरह नहीं मिली थी। जंगल, जमीन, खनिज और जल से उनको हटाया जा रहा था। इन सभी पीड़ा से परेशान आदिवासी

समाज ने एक सशक्त कदम उठाया। वो अपनी गाथाओं को मौखिक नहीं बल्कि लिखित रूप देना शुरु कर दिया। इन्होंने कहा, "हमारे बारे में अब और कोई नहीं लिखेगा, हम खुद अपनी कहानी कहेंगे"। जब आदिवासी समाज खनन परियोजनाओं, जंगल कानूनों के कारण पीड़ित हुआ तब साहित्य में विरोध का स्वर मुखर हुआ। महाश्वेता देवी के उपन्यास "अरण्यर और अधिकार" "झाँसिक रानी" और "चौरासी हज़ार की मां" में यह तीव्र स्वर दिखाई देता है। आदिवासी साहित्य का सबसे सुन्दर पक्ष है प्रकृति से उसका गहरा लगाव। आदिवासी साहित्य केवल दुख या अंधकार का नहीं बल्कि आत्म सम्मान और परिवर्तन का साहित्य है। स्वतंत्रता के बाद आदिवासी साहित्य के विषय भूमि और विस्थापन, शिक्षा और विकास, आदिवासी नारी की पीड़ा, संस्कृति और भाषा की रक्षा, अधिकार और कुशासन आदि बन गए। यह साहित्य केवल हिंदी में ही नहीं बल्कि संथाली, गोंडी, हो, मुंडारी, उरांव आदि भाषा में भी लिखी जा रही है। 2003 में संविधान की आठवीं अनुसूची में संथाली भाषा को सम्मिलित किया गया है। यह आदिवासी समाज की बड़ी उपलब्धि है।

आदिवासी भाषाओं में लेखन करने वाले कई लेखक हुए हैं, जिन्होंने अपनी भाषाओं और संस्कृति को जीवंत रखा है। आदिवासी साहित्य मुख्य रूप से अपनी वाचिक परंपरा पर आधारित नहीं रहा है, लेकिन अब लिखित साहित्य में भी महत्वपूर्ण काम हुआ है, विशेषकर संथाली, मुंडारी और कुडुक जैसी भाषाओं में। यहाँ कुछ प्रमुख आदिवासी भाषाओं के लेखक और उनकी रचनाएं दी गई हैं, जिन्होंने अपनी मूल भाषा या आदिवासी जीवन पर आधारित रचनाएं की हैं।

लेखक रघुनाथ मुर्मू ने अपनी रचना 'बिदु चांदन' संथाली भाषा में लिखा है, तो लेखक रामदयाल मुंडा की रचना 'आदि धरम' नागपुरी भाषा में लिखा गया है। निर्मला पुतुल ने अपनी रचना 'नगाड़ेकी तरह बजते शब्द' संथाली भाषा में लिखा है। इस तरह जनजातियों की विभिन्न भाषाओं में रचना की जा रही है, जो भारतीय भाषाओं की विविधता को दर्शाती है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आदिवासी साहित्य आज़ादी के पूर्व और बाद दोनों में समाज, शास्त्र, शिक्षा और राजनीति का भाग रहा है। इन जगहों पर अपना स्थान होने के बावजूद , इसे अपना सम्मान, समानता और पहचान नहीं मिल पाया है। आदिवासियों की असली स्वतंत्रता समानता का अधिकार मिलने के बाद ही माना जाएगा ।

आदिवासी साहित्य अब मौन नहीं, वाणी बन चुकी है। कितना भी दबा लो, लेकिन हर ज़ुबान की कहानी बन चुकी है।

संदर्भ सूची -

(1) आदिवासी साहित्य का इतिहास -
(2) इंटरनेट के विभिन्न साइट
(3) महाश्वेता देवी के उपन्यास “अरण्यर और अधिकार” “झाँसिक रानी” और “चौरासी हज़ार की मां”।